विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	P14:पाश्चात्य काव्यशास्त्र
इकाई सं. एवं शीर्षक	M7: अरस्तू का विरेचन सिद्धान्त
इकाई टैग	HND_P14_M7
प्रधान निरीक्षक	प्रो.रामबक्ष जाट
प्रश्नपत्र-संयोजक	प्रो.अरुण होता
इकाई-लेखक	प्रो.रवि श्रीवास्तव
प्रश्नपत्र समीक्षक	प्रो. एस.सी.कुमार
भाषा सम्पादक	प्रो. देवशंकर नवीन

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. विरेचन का इतिहास
4. विरेचन और त्रासदी का सम्बन्ध
5. विरेचन की कलापरक व्याख्या
6. विरेचन की धर्मपरक व्याख्या
7. विरेचन की नीतिपरक व्याख्या
8. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप

- विरेचन की सामान्य अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- त्रासदी और विरेचन के आपसी सम्बंध से परिचित हो सकेंगे।
- विरेचन का इतिहास जान सकेंगे।
- विरेचन की धार्मिक व्याख्या से परिचित होंगे।
- विरेचन की नीतिपरक व्याख्या जाने सकेंगे।
- विरेचन की कलापरक व्याख्या से अवगत हो सकेंगे।

2. प्रस्तावना

कैथार्सिस या विरेचन सिद्धान्त के प्रतिपादक ग्रीस के दार्शनिक और वैज्ञानिक अरस्तू हैं। अरस्तू प्लेटो के सबसे योग्य और प्रिय शिष्य माने जाते हैं। कहा जाता है कि अरस्तू की प्रतिभा से प्रभावित होकर प्लेटो ने कहा था कि "मेरे विद्यापीठ के दो भाग हैं-एक है शरीर और दूसरा मस्तिष्क। मेरे अन्य सभी छात्र शरीर हैं और अरस्तू मस्तिष्क है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र-देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ.20)
अरस्तू ने काव्य और नाटक से जुड़े हुए कई सिद्धान्त दिये। अपने गुरु प्लेटो के कई सिद्धान्तों में संशोधन भी किया। अरस्तू की कृतियां यूनानी (ग्रीक) भाषा में हैं। यूनानी भाषा के बहुत सारे शब्दों की अर्थवत्ता या अर्थछटा अंगरेजी में यथावत व्यक्त नहीं हो पाती। उदाहरण के रूप में 'मिमेसिस' शब्द को देखा जा सकता है। अंगरेजी में अनूदित होने पर इसे 'इमिटेशन' कहते हैं। लेकिन विद्वानों का मानना है कि यह 'मिमेसिस' का सटीक अनुवाद नहीं है। यूनानी शब्द 'मिमेसिस' के भाव अंगरेजी का यह शब्द ठीक व्यक्त नहीं कर पाता।

काव्यशास्त्र से जुड़े अरस्तू के सिद्धान्तों में काव्य और अनुकरण, त्रासदी की अवधारणा और विरेचन का सिद्धान्त प्रमुख है। सर्वप्रथम अरस्तू ने ही त्रासदी का विशद विवेचन किया।

अरस्तू के अनुसार विरेचन अर्थात् भावों का शुद्धिकरण किसी भी त्रासदी का उद्देश्य होता है। अरस्तू का मानना था कि स्वास्थ्य के लिए जिस प्रकार शारीरिक मल का निष्कासन और शोधन जरूरी है, उसी प्रकार मानसिक मल का निष्कासन-शोधन भी आवश्यक है। मनुष्य के मन में जो विविध भाव होते हैं, जैसे ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध, क्रूरता आदि, ये मानसिक विकार भी मनुष्य को मानसिक रूप से अस्वस्थ कर देते हैं। स्वस्थ रहने के लिए इन मनोभावों की मात्रा का सन्तुलन भी जरूरी होता है।

अरस्तू ने विरेचन का सिद्धान्त चिकित्साशास्त्र से ग्रहण किया था। विरेचन भारतीय चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद का एक पारिभाषिक शब्द है और 'कैथार्सिस' यूनानी चिकित्साशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। अरस्तू ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ *पोइटिक्स* में त्रासदी के सन्दर्भ में विरेचन का जिक्र किया है। विरेचन का सामान्य अर्थ होता है भावों का शुद्धिकरण। हिन्दी में इसका अनुवाद रेचन, विरेचन तथा परिष्करण शब्दों के रूप में किया गया है। इनमें विरेचन शब्द सर्वाधिक प्रचलित है।

अरस्तू (384 ई.पू.- 322 ई.पू.) का जन्म मकदूनिया के स्तगिरा नामक शहर में हुआ था। उनके पिता यूनानी सम्राट फिलिप के राजवैद्य थे। उन्होंने शारीरिक कष्टों के निवारण के लिए औषधि द्वारा विकारों को उभारकर उनका शमन होते देखा था। संभवतः विरेचन के सिद्धान्त की प्रेरणा अरस्तू ने अपने पिता से प्रभावित हो कर ही ली थी। अरस्तू का लालन-पालन सुसंस्कृत, सम्पन्न और अभिजात परिवेश में हुआ था। विद्वानों का मानना है कि उनकी इस परवरिश की छाप उनके

व्यक्तित्व पर भी पड़ी। उन्हें शारीरिक सुख-सुविधा के अवसर तो मिले ही, साथ ही साथ एक प्रकार का मानसिक अनुशासन भी मिला। शायद इसीलिए प्लेटो के विद्यापीठ में उनकी प्रतिभा के साथ उनका आभिजात्य भी चर्चा के केन्द्र में रहा।

माना जाता है कि यूनान की प्रगति के पीछे अरस्तू और उनके ज्ञान का बहुत बड़ा योगदान था। उन्होंने दर्शनशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, काव्यशास्त्र और भाषणशास्त्र आदि पर समान अधिकार दिखाया। इसी के साथ ही भौतिकविज्ञान, जीवविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, मनोविज्ञान आदि विधाओं में उनकी जानकारी का लोहा दुनिया मानती है। स्वयं अरस्तू का मानना था कि मनुष्य को 'ज्ञान की सभी शाखाओं में अबाध गति' से चलना चाहिए। कहना न होगा कि अपने कथन को उन्होंने अपने ऊपर लागू करके दिखाया।

कहा जाता है कि उन्होंने करीब चार सौ ग्रन्थ लिखे है। दुर्भाग्य से उनके अधिकतर ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं। उनके प्रसिद्धतम ग्रन्थ का यूनानी नाम 'पेरि पोएतिकेस' है। इसका अंग्रेज़ी रूपान्तर है 'ऑन पोइटिक्स' किन्तु वह केवल 'पोएटिक्स' नाम से प्रसिद्द है। एक हजार से भी अधिक वर्षों के बाद 'पेरि पोएतिकेस' विस्मृति के गर्भ से निकल कर विद्वानों के सामने आया।

3. विरेचन का इतिहास

'पेरि पोएतिकेस' लगभग पचास पृष्ठों की छोटी-सी पुस्तक है। इसमें 26 अध्याय हैं। अरस्तू मुख्य रूप से तर्क प्रवण दार्शनिक हैं। पोएटिक्स में विरेचन का उल्लेख मात्र है, उसका थोड़ा स्पष्टीकरण राजनीति शास्त्र में मिलता है.

यूनानी पद 'कथार्सिस' के लिए हिंदी में 'विरेचन' पद प्रचलित है। कुछ विद्वान इसके लिए 'शुद्धिकरण' पद का भी प्रयोग करते हैं। जिस तरह आयुर्वेद में 'विरेचन'एक पारिभाषिक शब्द माना जाता है, उसी प्रकार यूनानी चिकित्साशास्त्र में 'विरेचन' भी एक पारिभाषिक शब्द है। चिकित्सा शास्त्र में इसका अर्थ है – रेचक औषधियों द्वारा शरीर के अनावश्यक अस्वास्थ्यकर पदार्थ को बाहर निकालना। अरस्तू ने चिकित्सा शास्त्र के एक शब्द को सौन्दर्य शास्त्र के एक अर्थ गर्भित स्थायी उपकरण के रूप में परिणत कर दिया।

आयुर्वेद के अनुसार मनुष्य के शरीर में तीन दोष होते हैं-वात, पित्त और कफ। शरीर में जब तक इनका अनुपात प्राकृतिक रूप से ठीक रहता है तब तक मनुष्य का शरीर भी स्वस्थ रहता है। इनका अनुपात जब बिगड़ जाता है तब मनुष्य का स्वास्थ्य भी बिगड़ने लगता है। इस प्रकार शरीर में रोग अपना घर बनाने लगते हैं। शरीर के रोग को दूर करने के लिए वात, पित्त और कफ को फिर से अनुपात में लाना बहुत ही आवश्यक होता है।

शरीर में संचित दोष को निकालने के लिए हमेशा औषधि ही पर्याप्त नहीं होती। कभी-कभी औषधि के साथ कुछ शारीरिक क्रियाएं भी रोगी को करनी पड़ती हैं। या यूं कहें कि आयुर्वेदाचार्य रोगी के शरीर को कुछ क्रियाएं करने के लिए बाध्य करते हैं। ये क्रियाएं कई प्रकार की हो सकती हैं। अतः इनका पारिभाषिक नाम भी अलग-अलग है। इन्हीं में से एक क्रिया वमन (कै) कहलाती है। मनुष्य के अमाशय में संचित मल के निष्कासन के लिए रोगी से 'वमन' की क्रिया करवाई जाती है। इसी तरह पेट में संचित मल को निकालने के लिए रोगी से विरेचन (दस्त) की क्रिया करवाई जाती है।

विरेचन मल-निष्कासन द्वारा शरीर-शोधन तथा त्रिविध दोषों में साम्यावस्था के निष्पादन की अन्यतम प्रक्रिया या विधि को कहते हैं। इसकी सहायता से अतिरिक्त तथा व्याधिकारक मल शरीर से बाहर निकल जाता है। मल के निकलने से शरीर फिर से अपना सन्तुलन प्राप्त करने लगता है। इस प्रकार रोगी की व्याधि मिटने लगती है और धीरे-धीरे उसका शरीर स्वस्थ होने लगता है।

स्वास्थय के लिए जिस प्रकार शरीर के मल-मूत्र का शरीर से बाहर निकलना जरूरी है, उसी प्रकार मन के स्वास्थ्य के लिए मानसिक मल का निष्कासन और शोधन भी जरूरी है। ईर्ष्या, द्वेष, लोभ क्रोध, मोह, क्रूरता, अहंकार आदि मानसिक

मल भी मनुष्य को मानसिक रूप से अस्वस्थ बना देते हैं। मनुष्य के मन में इनकी मात्रा में भी सन्तुलन जरूरी होता है। साहित्य यही काम करता है।

आयुर्वेद में विरेचन शब्द का प्रयोग शारीरिक मल के शोधन के लिए ही रूढ़ है। धीरे-धीरे इस शब्द का अर्थ विस्तार भी हुआ है। साहित्य में इसका व्यवहार भाव-शोधन के लिए भी किया जाने लगा है। इसीलिए अरस्तू के 'कथार्सिस' के अनुवाद के रूप में इसे हिंदी में प्रचलित किया गया है।

इस शब्द पर पश्चिम में बहुत विवाद हुए हैं। विद्वानों में मतभेद देखने को मिले हैं। इस शब्द की धार्मिक, नैतिक, मानसिक आदि कई प्रकार की व्याख्याएं हुई हैं।

'कैथार्सिस' या विरेचन मूलतः अरस्तू द्वारा दिया गया शब्द नहीं है। यह बहुत ही पुराना शब्द है। प्लेटो ने भी अपने चिन्तन में इस शब्द का व्यवहार किया है। अरस्तू ने इसमें एक नया अर्थ भरने की कोशिश की है। नये सन्दर्भ में इस शब्द की भंगिमा और भाव भी बदल गये हैं।

'कैथार्सिस' या विरेचन शब्द अरस्तू के *पोइटिक्स* में सिर्फ एक बार ही आया है। इस शब्द का प्रयोग अरस्तू ने त्रासदी के प्रभाव के प्रसंग में किया है.

पोइटिक्स के छठे अध्याय के आरम्भ में अरस्तू ने त्रासदी की परिभाषा देते हुए लिखा है, "त्रासदी किसी गंभीर, स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है - जिसमें करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।" (पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन- निर्मला जैन, पृ. 59)

अरस्तू ने विरेचन शब्द की अलग से कोई व्याख्या नहीं की है। अतः विभिन्न भाष्यकारों ने इस शब्द की अलग- अलग व्याख्या की है। लम्बे समय तक यह माना जाता रहा कि भावों के विरेचन अथवा शोधन के द्वारा त्रासदी अथवा दुखान्तक नैतिक प्रभाव उत्पन्न करता है।

विरेचन शब्द का प्रयोग अरस्तू ने मूलतः दो अर्थों में किया है। पहला, त्रासदी विवेचन के प्रसंग में। इसमें उन्होंने कहा है कि त्रासदी भय और करुणा के भावों का विरेचन तभी पूरा करती है जब-

क. उसमें औदात्य-पूर्ण गंभीर कार्यों का अनुकरण हो।

ख. उसके विविध भागों में आनन्दप्रद भाषा का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया गया हो।

ग. अनुकरण अभिनय या कार्य के रूप में हो।

घ. उसमें भय और करुणा को उत्तेजित करनेवाली ऐसी घटनाओं का समावेश हो जिनसे इन भावों का विरेचन सम्पन्न हो सके।

विरेचन का दूसरा उल्लेख अरस्तू ने अपने ग्रन्थ *पॉलिटिक्स* में करते हुए कहा है कि धार्मिक उन्माद के नृत्य और संगीत के द्वारा भी भावों का विरेचन होता है।

4. विरेचन और त्रासदी का सम्बन्ध

काव्य शास्त्र में विरेचन की चर्चा न तो नैतिक अर्थ में हुई है न धार्मिक अर्थ में। वहां का सन्दर्भ मानसिक या भावात्मक है, साथ ही कलात्मक भी। अरस्तू ने त्रासदी का उपयोग मनोविकारों की शुद्धि के लिए किया तथा त्रासदी को एक मनोवैज्ञानिक औषधि की तरह मान्यता दी। अरस्तू की यह धारणा है कि त्रासदी के संपर्क से विरोधी भाव नष्ट हो जाते हैं

और क्षुब्ध भावों में सन्तुलन स्थापित होता है। उनके परिष्कार से आनन्द मिलता है। अरस्तू बताते हैं कि त्रासदी भावों की शुद्धता और परिष्कार से व्यक्ति और समाज में नैतिक प्रभाव उत्पन्न करती है।

त्रासदी दुःख की कथा होती है, किन्तु वह केवल दुःख कथा नहीं है। उस दुःख के साथ कुछ ऐसे प्रसंग जुड़े होते हैं जिसका आभास या स्वप्न में भी जिसकी कल्पना त्रासदी नायक को नहीं होती। संकटकाल में विपत्ति उन लोगों द्वारा लायी गई हो जो परम विश्वासपात्र हों, निकट सम्बन्धी हों या मित्र हों, जिनपर त्रासदी नायक का अगाध विश्वास हो कि वे ऐसा नहीं कर सकते। ऐसे में जो विस्मय या आश्चर्य का भाव उत्पन्न हो अर्थात जो नहीं होना चाहिए वह घटित हो रहा है, महान त्रासदी एवं त्रासदी नायक उसी भाव से जन्म लेते हैं। आज भी शेक्सपीयर के नाटक 'जुलियस सीजर' में छुरे के अंतिम प्राणलेवा प्रहार पर सीज़र की यह उक्ति मुहावरे के रूप में दुहराई जाती है, 'दाऊ टू ब्रूटे', अथवा यू टू ब्रूटस ! यद्यपि ब्रुट्स सीज़र का परम मित्र था। इस वाक्यखण्ड में आश्चर्य भी है और विस्मय भी। साथ ही, मित्रता पर सीज़र के अन्धविश्वास की चारित्रिक कमजोरी भी है, जिसे सीज़र जीवनपर्यन्त नहीं समझता और जब समझने का मौका आता है तब तक पानी सिर के ऊपर से गुजर चुका होता है।

सामान्यतः शत्रु विपत्ति उत्पन्न करते हैं। जहाँ मित्र विपत्ति उत्पन्न करते हैं वहाँ हमारा विस्मित हो जाना स्वाभाविक है। भय और करुणा के प्रसार के लिए इससे बेहतर प्रसंग नहीं हो सकता। संक्षेप में, त्रासदी किसी श्रेष्ठ नायक द्वारा ऐसे कार्य का सम्पादन है जो उसे अप्रत्याशित घटनाओं में डालती हुई अन्ततः अनेपक्षित अन्त की ओर ले जाती है जहाँ वह अपने किए पर न पछता सकता है, न उसे सुधार सकता है। इस विपत्ति के बीज नायक के चरित्र के एक दोष में निहित होते है। बीज रूप में निहित यह दोष नायक को बराबर अग्रेषित करता है। उसके विनाश पर भाग्य भी हँसता है। ऐसे समय पर वह अनजाने में वह सब कुछ बोलता है जो दर्शकों को उसके अन्त की सूचना देते हैं। मसलन, 'जूलियस सीज़र' नाटक में सीज़र कहता है, 'खतरा जानता है, सीज़र का ख़तरा ख़तरे से अधिक खतरनाक है'। यह अतिशय आत्मविश्वास ही उसे ले डूबता है। भाग्य उस पर हँसता है। यह हंसी भय और करुणा से भावों को प्रक्षालित करती है।

इसलिए अरस्तू ने इस बात पर जोर दिया कि त्रासदीकार को नैतिकता और शिक्षा का प्रसार अव्यक्त रूप से करना चाहिए। अनैतिक स्थल अपने पूर्ण सन्दर्भ में ही सार्थक हैं। कवि न तो खुल्लम-खुल्ला नैतिक आदर्शों का प्रचारक हो सकता है और न आध्यात्मिक विचारों का प्रवर्तक ही। नैतिकता-अनैतिकता को काव्य में मूर्त्त परिस्थितियों के माध्यम से सामने आना होगा।

5. विरेचन की कलापरक व्याख्या

अरस्तू ने सबसे पहले विरेचन की कलात्मक व्याख्या की। इस शब्द को नया अर्थ देकर काव्य और कला के क्षेत्र में लागू किया। प्लेटो ने विरेचन या 'कैथार्सिस' की व्याख्या करते हुए कहा था कि 'सभी सुख-दुखमयी वासनाओं का विरेचन या शुद्धिकरण ही वास्तव में सत्य है।' इसी को आधार बनाकर अरस्तू ने विरेचन की अपनी व्याख्या प्रस्तुत की।

अरस्तू के अनुसार, कविता और नाटक में जिन भावनाओं और वासनाओं का चित्रण होता है, मंच पर प्रदर्शन होता है, वे मनुष्य के भीतर स्वार्थ और अहंभाव से भरी हुई हानिकारक भावनाएं नहीं रह जाती हैं। कलात्मक अभिव्यक्ति से विरेचित हो जाने के कारण इन भावनाओं और वासनाओं का उदात्तीकरण और शुद्धिकरण हो जाता है।

विरेचन की कलापरक व्याख्या करनेवाले विद्वानों में सबसे प्रमुख बुचर हैं। ये अरस्तू के *पोइटिक्स* के प्रसिद्ध भाष्यकार भी हैं। बुचर का मानना है कि "वास्तविक जीवन में करुणा और भय के भाव दूषित और कष्टप्रद तत्त्वों से युक्त रहते हैं। दुखान्तकीय उत्तेजना में दूषित अंश के निकल जाने से वे कष्टप्रद के बदले आनन्दप्रद बन जाते हैं। बल्कि यों कहें कि वे भाव स्वयं ही शोधित अथवा विरेचित हो जाते हैं।

इस दृष्टि से दुखान्तक का कार्य केवल करुणा और भय का निर्गम मार्ग तैयार करना ही नहीं है, बल्कि उन्हें कलात्मक संतुष्टि का स्पष्ट साधन भी बनाना है, उन्हें कला के माध्यम के बीच से पार कर शुद्ध और स्वच्छ भी बनाना है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र-देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ.57)

डॉ. नगेन्द्र ने इस व्याख्या पर विचार करते हुए लिखा है कि विरेचन की प्रक्रिया के दो पक्ष होते हैं। पहला अभावात्मक और दूसरा भावात्मक। करुणा और त्रास का उद्रेक और उनके शमन से निष्पन्न मानसिक सन्तुलन विरेचन का अभावात्मक यानी पूर्व पक्ष है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार अरस्तू ने विरेचन का जिस अर्थ में प्रयोग किया है उसमें उसकी अभावात्मक व्याख्या तो मिलती है, किन्तु भावात्मक पक्ष की ठीक-ठीक व्याख्या नहीं मिलती है।

6. विरेचन की धर्मपरक व्याख्या

अरस्तू के *काव्यशास्त्र* के अनुवाद की भूमिका में गिलबर्ट मरे ने यह जानकारी दी है कि रोम में यूनानी त्रासदी का प्रयोग कलात्मक अभिरुचि के लिए नहीं, बल्कि एक धार्मिक अंधविश्वास के रूप में, महामारी के निवारण के लिए हुआ था।
अरस्तू ने खुद भी एक धार्मिक प्रक्रिया का उल्लेख किया है। अरस्तू ने धार्मिक विरेचन का उल्लेख अपने *राजनीतिशास्त्र* (5/8) में किया है। उनका कहना है कि कभी कोई किसी देवता द्वारा आविष्ट हो जाता था। उस स्थिति में वह जो कुछ भी करता था, वह क्षम्य माना जाता था। उस समय तीव्र संगीत के माध्यम से ऐसे आदमी के आवेश को चरम पर पहुंचा कर शांत किया जाता था। इस प्रसंग में अरस्तू ने संगीत के विरेचक प्रभाव की चर्चा की है। उन्होंने संगीत के तीन प्रभावों का उल्लेख किया है। एक वह जो नैतिक प्रभाव या शैक्षिक मूल्य उत्पन्न करता है। दूसरा वह जो आनन्द उत्पन्न करता है। तीसरा वह होता है जो अत्यन्त उग्र और अशांत होता है और धार्मिक उन्माद को शांत करता है। इस तीसरे प्रकार के संगीत को ही अरस्तू ने 'विरेचक' कहा है। इसका भावात्मक परिणाम है 'निर्दोष आनन्द'. धार्मिक उन्माद के कारण को ऐसा संगीत शांत करता है।

7. विरेचन की नीतिपरक व्याख्या

विरेचन की नीतिपरक व्याख्या का श्रेय जर्मनी के बार्नेज को दिया जाता है। उनके अनुसार "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विरेचन का अर्थ हुआ करुणा और भय नामक मनोवेगों की उत्तेजना द्वारा संपन्न, अन्तर्वृत्तियों का समंजन अथवा मन की शान्ति और परिष्कृति।" (पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन- निर्मला जैन, पृ. 60) अरस्तू के शब्दों में कहा जाय तो शुद्धि के अनुभव का अर्थ है आत्मा की विशदता और प्रसन्नता। रैनेवेलक ने बार्नेज की इस व्याख्या का खण्डन किया है।
विरेचन की व्याख्या करते हुए यह कहा गया कि त्रासदी द्वारा उत्पन्न भय और करुणा उत्तेजित होकर दूसरी भीषण वासनाओं जैसे, क्रोध आदि को शान्त कर देते हैं। इस बात का प्रभाव व्यक्ति के आचार और नैतिकता पर पड़ता है. कई विचारकों ने यह भी मत दिया कि भय और करुणा के भावों के, त्रासदी में प्रदर्शन द्वारा, दर्शकों के मन में रहनेवाले इन्हीं भावों का, निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर विरेचन हो जाता है। इससे व्यक्ति की नैतिकता उदात्त हो जाती है।

8. निष्कर्ष

विरेचन से अरस्तू का ठीक-ठीक क्या अभिप्राय था, यह पता न होने के कारण विरेचन की कई व्याख्याएं हुई हैं। प्रो. निर्मला जैन ने अनुमान लगाया है कि अरस्तू के "काव्य-चिन्तन का एक केन्द्रीय सरोकार यह था कि प्लेटो द्वारा लगाये गये आक्षेपों के विरुद्ध काव्य का पक्ष-समर्थन कर सकें। उसके (काव्य के) पक्ष में दलीलें प्रस्तुत कर सकें।" (पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन- निर्मला जैन, पृ. 63)
करुणा और भय मन को सुख देने वाले भाव नहीं होते हैं। फिर कविता और नाटक में आने के बाद ये भाव दर्शक या पाठक को आनन्द कैसे देते हैं? इस मत पर काफी वाद-विवाद चला । अरस्तू ने भी इस प्रश्न का कोई ठीक-ठीक जवाब नहीं दिया। लेकिन विरेचन से संबंधित अरस्तू की अवधारणाओं को जानने के बाद यह कहा जा सकता है कि "वास्तविक जीवन में

करुणा और भय के भाव दुख से संवलित अवश्य होते हैं किन्तु कलात्मक प्रक्रिया के वैशिष्ट्य के कारण दुखद अंश विलुप्त हो जाता है और शुद्ध आनन्द बचा रहता है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र-देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ.59-60)

शोधन या विरेचन का साहित्यिक स्वरूप क्या हो, अरस्तू इस पर चुप हैं। अपने लेखन में कहीं भी उन्होंने इसका कोई संकेत नहीं किया है। उनके लेखन से सिर्फ इतना ही पता चलता है कि विरेचन द्वारा वे किसी कष्टप्रद या अशान्तिप्रद तत्त्व की ओर इशारा करना चाहते हैं। अपने 'शासन शास्त्र' ग्रन्थ में इस शब्द की जो परिभाषा उन्होंने दी है उससे विद्वानों की इस धारणा की पुष्टि होती देखी जा सकती है। अरस्तू के अनुसार, "भय घातक या कष्टकर आसन्न अनिष्ट की आशंका से उत्पन्न एक प्रकार की पीड़ा है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र-देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ.57) इस परिभाषा में तीन बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। पहली यह कि अनिष्ट ऐसा हो जो घातक प्रतीत होता हो। दूसरी यह कि वह आसन्न हो और तीसरी यह कि उसका प्रभाव हम पर ही पड़नेवाला हो।

इसी तरह "करुणा घातक या कष्टकर अनिष्ट से उत्पन्न एक प्रकार की पीड़ा है जिसका सम्बन्ध ऐसे व्यक्ति से होता है जो वस्तुतः उसका पात्र नहीं होता; जैसे सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में राजा हरिश्चन्द्र और रानी शैव्या को कष्ट सहते देख हम करुणा से भर जाते हैं. अपने ऊपर या किसी अत्मीय के ऊपर इस अनिष्ट के निकट भविष्य में घटित होने की हमें आशंका बनी रहती है।" (वही, पृ. 57) मानना चाहिए कि अरस्तू के अनुसार करुणा और भय, दोनों ही पीड़ादायक भाव है। त्रासदी या काव्य हमारे इन्हीं भावों का विरेचन करने की कोशिश करते हैं।

अरस्तू का कहना है कि वस्तुत: भावों का दमन हितकर नहीं हानिकर है। उन्हें दमित करने के बदले संतुलित रखना वांछनीय और आवश्यक है। दुखान्तक भावों का उद्रेक करता है, वह उद्रेक स्थायी नहीं होता किन्तु भावों में सामंजस्य और सन्तुलन आता है। मन एक प्रकार की आनन्दप्रद विश्रान्ति का अनुभव करने लगता है। इससे भावात्मक रुग्णता दूर हो जाती है।

यह व्याख्या होम्योपैथी के अनुकूल है जिसका सिद्धान्त है - सम: समं शमयति. करुणा और भय के भाव उद्रिक्त होकर मन में विद्यमान करुणा और भय का शमन कर देते हैं, जिससे मन पहले की अपेक्षा स्वस्थ हो जाता है। वास्तविक जीवन में करुणा और भय के भाव दुःख से संवलित अवश्य होते हैं किन्तु कलात्मक प्रक्रिया के वैशिष्ट्य के कारण दुखद अंश विलुप्त हो जाता है और शुद्ध आनन्द बचा रहता है।

विरेचन से केवल भावनात्मक शान्ति ही नहीं मिलती, बल्कि भावों का परिष्कार भी होता है, भले ही वः अस्थायी हो। डॉ नगेन्द्र का कथन है कि सफल त्रासदी का चमत्कार मूलत: रागात्मक है, यह विरेचन प्रक्रिया द्वारा भावों को उद्बुद्ध करती है, उनका समंजन करती है और इस प्रकार आनन्द की भूमिका प्रस्तुत करती है. यही विरेचन सिद्धान्त की महत्वपूर्ण देन है। यदि ऐसा न होता और त्रासदी केवल भावों को विक्षुब्ध करके छोड़ देती तो प्रेक्षक समय और धन खर्च कर त्रासदी देखने क्यों जाते?

हालांकि कई लोगों ने इस पर प्रश्न भी उठाया है। देवेन्द्रनाथ शर्मा का मत है कि "दुखान्तक देखने के बाद ऐसा तो होता नहीं कि क्लेशकर भावों से मनुष्य हमेशा के लिए मुक्त हो जाय; यदि ऐसा होता तो नाटक नैतिक सुधार का सर्वोत्तम साधन बन जाता; जेलों की जगह नाट्यशालाएं ले लेतीं।" इसलिए कहना चाहिए कि विरेचन से "स्थायी भाव-परिष्कार तो नहीं होता पर तात्कालिक अवश्य होता है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र-देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ.60) यही विरेचन की सार्थकता है।

कहना उचित होगा कि अपनी कमियों और क्षमताओं के साथ विरेचन सिद्धान्त पाश्चात्य काव्य शास्त्र को अरस्तू की उल्लेखनीय देन है.

A Gateway to All Post Graduate Courses